निष्कर्ष

भोजपुरी सिनेमा 50 वर्षों से ज्यादा का सफर तय कर चुका है। इसे कई ऐसे निर्देशक-निर्माता मिले जो कभी बुलंदियों पर ले गए तो कभी ऐसे लोगों का साथ मिला जो इसकी छवि धूमिल करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। भोजपुरी सिनेमा की अपनी एक खास पहचान है और वह है इसका अपना लोक। क्षेत्रीय फ़िल्मों के शुरुआत से ही लोक को परोसा जा रहा था। वह बंगाली सिनेमा हो या फिर कोई अन्य भाषाई सिनेमा। हर राज्य-देश की अपनी एक विशेष लोक-कला होती है।

भोजपुरी भाषा में फ़िल्म का निर्माण होना वास्तव में किसी चमत्कार से कम नहीं था। नज़ीर हुसैन के कठिन प्रयासों ने आज हमारे समक्ष भोजपुरी भाषा में फ़िल्म निर्माण की कहानी को प्रदर्शित कर दिया। आज स्थिति यह है कि भोजपुरी सिनेमा में लोक का प्रतिनिधित्त्व कम होते जा रहा है। नज़ीर के साहित्यिक एवं ठेठ ग्राम्यबोध के विचारों से ओत-प्रोत फ़िल्मों का अब जमाना नहीं रहा। क्योंकि वह एक अलग समय था, जब नज़ीर हुसैन की फ़िल्मों को देखने के लिए सुदूर इलाकों से लोग पैदल सिनेमा हाल तक चले आते थे। प्रमाण तो यह भी मिलता है कि सुदूर के क्षेत्रों से जो लोग सिनेमा देखने जाते थे, वह अपने साथ खाने-पीने के सामान के साथ जाते थे ताकि उसे देर भी हो तो वहीं भोजन कर सके। एक बात यह भी थी कि भोजपुरी भाषा में फ़िल्म के निर्माण होने की खुशी तो लोगों में थी ही। इस लिए भी दर्शक सिनेमा देखने पहुँचे। इसके साथ ही इसे देखने दूर-दूर से आने के पीछे एक कारण यह भी था कि इसमें सामाजिक मुद्दों, सामाजिक-समस्याओं आदि को बहुत अच्छे ढंग से परोसा गया था नतीजतन इसे लोग परिवार के साथ देखते थे। वर्त्तमान दौर में भोजपुरी की जो भी फ़िल्में बन रही हैं उनमें बेहतर कंटेंट

(सामग्री) की कमी साफ तौर पर नज़र आती है। शोध भी इन्हीं सभी समस्याओं के इर्द-गिर्द घूम रहा था।

शोध अध्ययन का मूल विषय, 'भोजपुरी सिनेमा के विभिन्न चरणों के थिमेटिक चेंज का आलोचनात्मक अध्ययन' था। इस शोध अध्ययन में निम्नलिखित पाँच उद्देश्यों को शामिल किया गया था।

- भोजपुरी सिनेमा के विभिन्न चरणों में आए thematic change (थीम-परिवर्तन) को जानना।
- भोजपुरी सिनेमा में भाषा, संवाद और शैली को समझना।
- क्या भोजपुरी सिनेमा बाज़ार की ओर अग्रसर हो रहा है।
- भोजपुरी सिनेमा में किस तरह की फिल्मों का प्रचलन बढ़ा है इसका पता लगाना।
- भोजपुरी सिनेमा के माध्यम से भोजपुरिया संस्कृति के प्रभावों को समझना।

अवलोकन पद्धति द्वारा भोजपुरी के तीनों चरणों के सिनेमा को देखकर उसके आंतरिक पहलुओं को समझने की कोशिश की गई, जिसके आधार पर निम्नलिखित तथ्य प्राप्त हुए

भोजपुरी सिनेमा के थीम में परिवर्तन हुए हैं, जहाँ पहले सामाजिक विषयों पर फ़िल्में बनती थीं, आज वे एक्शन/मारधाड़ और मेलोड्रामा थीम पर केंद्रित हो गई हैं।

- भोजपुरी सिनेमा में भाषा, संवाद-शैली के तौर पर बहुत बदलाव हुआ है। संवाद में बहुत ज्यादा द्विअर्थीय भाषा का प्रयोग किया जाने लगा है।

- भोजपुरी सिनेमा बाजार की ओर अग्रसर होता दिखाई दे रहा है। जो भी फ़िल्में बनाई जा रही हैं वह केवल पैसे कमाने के उद्देश्य से बनाई जा रही हैं। उनका सामाजिक सरोकार से कोई मतलब नहीं है।
- भोजपुरी में फ़िल्मों का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ा है। जहाँ सालों में एक या दो फ़िल्में तैयार हुआ करती थीं, वहीं आज दो-चार महीने में कई फ़िल्में बन जा रही हैं।
- भोजपुरी सिनेमा में जिस संस्कृति, परिवार और व्यवहार को दिखाया व परोसा जा रहा है, वह वास्तव में भोजपुरी संस्कृति का समर्थक नहीं है।

इस प्रकार शोध अध्ययन के माध्यम से शोध के उद्देश्यों को प्राप्त किया गया। इसके अलावा उद्देश्यों से इतर भी कई जानकारियाँ महत्त्वपूर्ण साबित हुई।

भोजपुरी सिनेमा की दृश्य-छायांकन की स्थिति ऐसी हो गई है कि लोग अपने घरों में इसे देखने में असहज महसूस करते हैं। भोजपुरी में सिनेमा केवल बाजार के लिए बन रहा है, जिसका उद्देश्य केवल धनोपार्जन करना है न कि समाज को उचित दिशा देना।

भोजपुरी सिनेमा के पहले चरण में नज़ीर हुसैन की 'गंगा मइया तोहे पियरी चढ़इबो' हो या बच्चू भाई शाह की 'बिदेसिया' इन सब ने अपने समय में अच्छा काम किया। दूसरे चरण में नज़ीर हुसैन की 'बलम परदेसिया' ने भोजपुरी सिनेमा को एक जबर्दस्त रफ्तार दी। तीसरे चरण से अजय सिन्हा की 'ससुरा बड़ा पइसावाला' ने सिर्फ और सिर्फ कमाई पर ध्यान दिया। भोजपुरी सिनेमा में लंबे समय के बाद बदलाव की एक उम्मीद 2010 में बनी नीतिन चंद्रा की 'देसवा' से देखने को मिली। यह फ़िल्म युवाओं से जुड़ी रोजगार आदि की समस्या पर केंद्रित है। बस जरूरत है समाज को साथ लेकर चलने की और भोजपुरी लोक और संस्कृति की महक को बरकरार रखने की।

सुझाव

सिनेमा – चाहे किसी भी देश क्षेत्र या किसी भी भाषा में बनीं हो – यह कला और विज्ञान के मेल से उत्पन्न एक ऐसा माध्यम है, जो एक ही समय में एक साथ समाज के सभी वर्गों और आयु के दर्शकों पर अलग-अलग असर डालती है। इसलिए भोजपुरी सिनेमा को विशुद्ध व्यावसायिक होने से बचना होगा। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वर्त्तमान वैश्विक युग में सिनेमा अपने-आप को व्यावसायिक होने से नहीं बचा सकता, लेकिन उसे व्यवसाय और विशुद्ध व्यवसाय के अंतर को समझते हुए संतुलन की स्थिति बनानी होगी।

भोजपुरी सिनेमा के द्विअर्थी संवादों या गीतों से बचना होगा। कम- से-कम उस सीमा पर जाकर जहाँ, द्विअर्थी संवाद या गीत अश्लीलता के दायरे में आने लगती है या उसपर अश्लीलता का आरोप लगने लगता है।